International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 11 Issue 3, May-Jun, 2023, Impact Factor: 7.326

पूर्व–मध्यकालीन भारत में स्वदेशी चिकित्सा विज्ञानः एक अध्ययन

डॉ. पिंकी यादव

सह आचार्य, इतिहास विभाग, बी॰एस॰आर॰ राजकीय कला महाविद्यालय अलवर

सारांश

भारत की स्वदेशी चिकित्सा प्रणाली को आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद शब्द का शाब्दिक अर्थ है– लंबी उम्र प्राप्त करने का विज्ञान। प्राचीनकाल में आयुर्वेद को विकसित करने में अनेक ऋषियों का योगदान है। चरक संहिता में आठ खंड तथा 120 अध्याय हैं, यह मुख्यतः काय–चिकित्सा का ग्रंथ है। इस ग्रंथ में अपने पूर्व के ज्ञान और चिकित्सा पद्धतियों को सम्मिलित किया गया है।

संकेताक्षरः स्वेदशी चिकित्सा, प्राचीन शल्य चिकित्सा।

प्रस्तावना

अथर्ववेद के विभिन्न मंत्रों तथा स्तोत्रों में शरीर–रचना, भेषजविद्या, चिकित्सा आदि विषयों का उल्लेख है। इस वेद के दसवें खंड में मनुष्य–सृष्टि के संबंध में एक स्त्रोत है। इतिहास प्रसिद्ध चिकित्सक आत्रेय, सुश्रुत, चरक आदि के पूर्व ब्राह्मण साहित्य में जिन चिकित्सकों का उल्लेख मिलता है उसके आधार पर निम्न प्रारूप के द्वारा उनके ज्ञान स्थानान्तरण को दिखाया जा सकता है –

आत्रेय (अनुमानतः ई.पू. 600)

आत्रेय, अत्रि ऋषि के पुत्र थे। उनका पूरा नाम है आत्रेय पुनर्वसु। बौद्ध जातकों के आधार पर होएर्नले ने यह निष्कर्ष निकाला है कि आत्रेय संभवतः तक्षशिला के प्रख्यात विश्वविद्यालय में चिकित्सा विज्ञान के अध्यापक थे। ईसा पूर्व छठी शती या उसे कुछ पहले वे जीवित थे। उन्होंने चिकित्सा संबंधी अनेक ग्रंथों की रचना की, उनमें आत्रेय संहिता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पाँच खंडों में यह ग्रंथ लिखा गया है। अनेक प्रकार की व्याधियाँ, वस्तु–गुण, भेषज, चिकित्सा विधान आदि इस ग्रंथ के मुख्य आलोच्य विषय हैं। उनके शिष्यों ने आत्रेय–चिकित्सा पद्धति की विशद चर्चा की है। अग्निवेश द्वारा रचित अग्निवेश–तंत्र के आधार पर ही चरक और दृढ़बल ने चरक संहिता की रचना की। भेल और हारीत संहिता भी अति मूल्यवान प्राचीन चिकित्सा–ग्रंथ है। इन ग्रंथों से भी आत्रेय की चिकित्सा–पद्धति का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है।

चिकित्सा का संकलित रूप चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट की संहिताओं से ही मिलता है। इन संहिताओं में आज ही की भांति चिकित्सा के विभिन्न अवयवों का विचार किया गया है। इस प्रकार सामान्य शल्यन, वृद्धों और बच्चों की सर्जरी कंठ, कर्ण, नासिका पर शल्यन, दाँतों और हड्डियों का आपरेशन अलग–अलग रूप में वर्णित किए गए हैं। हँसली हड्डी के ऊपर की जाने वाली शल्य क्रिया को श्शालक्यच्य कहते थे और अन्य भागों पर की जाने वाली क्रिया शल्य के नाम से प्रसिद्ध थी। आँखों पर किए जाने वाले शल्य कर्मों में मुख्यतः मोतिबिन्द का ऑपरेशन था जिसका विवरण काफी विस्तार से दिया गया है। इसके अतिरिक्त नाखूनों (पक्ष्य) रक्त नलिकाओं के गुल्म का भी आपरेशन किया जाता था। पलकों की बरौनियों की संख्या बढ़ जाने पर या पलकों के अन्तर्मुखी हो जाने पर उन्हें एक चिमटी से उखाड़ा जाता था जिसे मुचण्डी कहते थे। कनपटी पर जोंक लगाने की रीति भली–भाँति अभ्यास में लायी जाती थी और इस प्रकार समलबाई में आंखों का दबाव (टेंशन) कम किया जाता था। जोंक लगाने की रीति के साथ–साथ उनकी पहचान के चिन्हों का भी वर्णन किया गया है। जिससे विषैली और विषहीन अलग–अलग की जा सके।

अन्य हड्डीयों तथा जोड़ों पर होने वाले आपरेशनों में टूटी हड्डी को जोडना और उखड़े जोड़ों को ठीक करना सम्मिलित था। हड्डियों को मजबूती देने के लिए कुश (स्प्लिंट) का प्रयोग होता था, ये कुछ विभिन्न वृक्षों की छल और तने से बनायी जाती थी और जब स्प्लिंट नहीं मिल पाती थी तो रोगी के अंग को कुश रूप में प्रयुक्त कर लेते थे। सिर की हड्डी के टूटने पर नीचे दबे हुए टुकड़े को ऊपर करने का रिवाज था जिससे अन्दर के दिमाग पर कुछ असर न आए। कभी–कभी हड्डी को काटकर निकाल देने की आवश्यकता पड़ती थी और उसके लिए आरे की आकृति के कट पत्र का उपयोग किया जाता था। शेष हड्डी पर कवालिका या कोरा बंधन (पट्टी) बांधा जाता था।

बवासीर, भगन्दर के आपरेशन करने के लिए विभिन्न प्रकार की आपरेशन टेबिलें थी। साथ ही इनके दिग्दर्शन तथा आपरेशन और औषधि लगाने के लिए एक या दो छेद वाले शमी यंत्र (प्रोक्टोस्कोप) थे। भगन्दर को काटने के लिए क्षार में डूबे हुए धागों का उपयोग होता था। ठीक ऐसा ही आजकल चांदसी वाले करते हैं। ऐनेमा लगाने के लिए विभिन्न आकार और आकृतियों वाले ऐनेमाटि डब थी, जो की विभिन्न रोगी की आयु, लिंग और ऐनेमा की मात्रा पर निर्भर करती थी।

इन सभी आपरेशनों को करने के लिए अच्छे औजार होते थे जो यंत्र (कुंडधार) और शास्त्र (तेजधार) कहलाते थे। सुश्रुत ने 101 यंत्रों की स्वास्तिक, संदेश, ताल नाड़ी यंत्र और उपयंत्रों में विभाजित किया है। इन यंत्रों के नाम पशु–पक्षियों पर रखे गए थे और इनका आकार उन जीवों के मुख या चोंच पर आधारित था।

रोगियों के आराम के लिए शयन कक्ष बने हुए थे जो भली–भाँति शीत एवं ऊष्मा से सुरक्षित थे। रोगियों को प्रसन्न मुद्रा में रखने के लिए अस्पताल से 'जू' भी संबंधित थे। शिशुगृह तथा प्रसूतिगृह अलग–अलग होते थे तथा सुश्रुत ने अलग–अलग कक्षों का वर्णन किया है जिनमें रोगी ऑपरेशन के पहले और बाद में रहा करते थे। जब रोगी वृद्ध, दुर्बल, स्त्री, बालक या बड़ा ही भीरु (डरनेवाला) हो या सुकोमल शरीर वाला हो और इस तरह शल्य–क्रिया के लिए उपयुक्त न हो तो जोकें लगानी चाहिए, क्योंकि इस तरह खून निकालने का तरीका सबसे सरल है। कुपित बात, पित्त, कफ से दूषित खून को जोकों, सिंगियों, अलाब यंत्रों या जो भी साधन उपलब्ध हो उससे निकालना चाहिए, रक्तदोष का कारण कुछ भी हो, जब कभी खून निकालना या चूसना जरूरी समझा जाए, ऐसा करना चाहिए।

सुश्रुत

भारतीय चिकित्सा प्रणाली को प्रवहमान दिशा देने में चरक एवं सुश्रुत परम्परा का आधार रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। चिकित्सा शास्त्र के वृहद एवं परिष्कृत रूप के क्रमबद्ध एवं व्यस्थित परिवेश में समाहित आचार्य सुश्रुत कृत सुश्रुतसंहिता आधुनिक युग में भी चिकित्सा की मौलिक आवश्यकता का सही निरूपण करती हुई मानव जीवन को दीर्घायु रहने का अनवरत संदेश देने में सक्षम बनी हुई है।

काय चिकित्सा की परम्परा में जो कार्य चरक संहिता ने किया, वही कार्य शल्य तंत्र की परम्परा में सुश्रुत ने किया। चरक के समान सुश्रुत भी अति प्राचीन है, यद्यपि चरक की परम्परा में आत्रेय पुनर्वसु और भरद्वाज तक पहुँचती है। सुश्रुत की भी अपनी ऐसी ही परम्परा होगी, लेकिन हम उतनी निश्चयता से उल्लेख नहीं कर सकते जितनी कि चरक की परम्परा का। सुश्रुत शल्य चिकित्सा के जनक कहे जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि नागार्जुन ने सुश्रुत रचित सुश्रुत संहिता का बाद में संपादन भी किया।

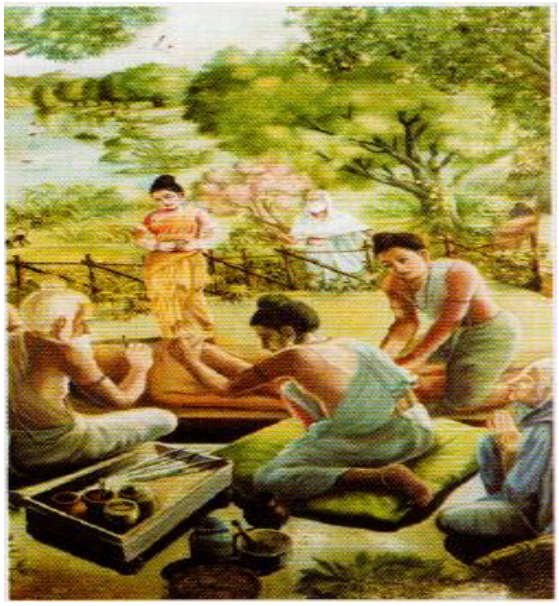

सुश्रुत काल में शल्य क्रिया

इसी प्रकार चतुर्थ शताब्दी के नवनीतक नामक ग्रन्थ में चरक तथा सुश्रुत का उल्लेख है। चरक के समान सुश्रुत की कीर्ति भी भारत की सीमा के बाहर तक पहुँच गई। 9–10वीं शताब्दी के पूर्व में कम्बोडिया तक तथा पश्चिम में अरब तक इसका नाम प्रचलित हो गया था। अरबी में अनूदित सुश्रुत 'सस्त्रद' नाम से प्रसिद्ध है। 11वीं शताब्दी में चक्रपाणिदत्त ने भानुमति व्याख्या नाम से इसकी टीका की और सुश्रुत का जो रूप हमें इस समय प्राप्त है, वह इस टीका के समय का ही है। लेकिन जब हम सुश्रुत के व्यक्तित्व एवं कालक्रम की बात करने लगते हैं तो चरक की तरह ही ठोस वैज्ञानिक तथ्यों के अभाव में विवादास्पद पहलुओं में अपनी जिज्ञासा को भटकते हुए पाते हैं। उसका करण है, भारतीय लेखन का ऐतिहासिक क्रम में न होना।

इस प्रकार भिन्न–भिन्न विद्वानों के दृष्टिकोण से विचार करने पर सुश्रुत संहिता के पूर्व भाग (सूत्र, निदान, शरीर, चिकित्सा, कल्प) का समय कम से कम भी आज से 2600 वर्ष पूर्व प्रतीत होता है। सुश्रुत के ही समकालीन औषधेनव नामक एक आचार्य और हुए हैं।

काय चिकित्सा सम्बन्धित क्षेत्र में योगदान

यद्यपि सुश्रुत का विषय क्षेत्र शल्यतंत्र का है। शल्यतंत्र से रोग की निवृत्ति शीघ्र होती है, अतः सुश्रुत इसे सब तंत्रों से अधिक महत्व का मानते है। लेकिन इसके साथ उनका काय चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान भी सराहनीय है। व्याधियों का वर्गीकरण एवं उनके उपचार का विस्तारपूर्वक सम्यक् विवेचन सुश्रुत संहिता का महत्वपूर्ण विषय रहा है। कतिपय रोगों के लिए विशिष्ट औषधियों का निर्धारण किया गया है।

सुश्रुत में कनक (सोना), रजत, ताम्र, रीति (पीतल) त्रपु (रांगाय वंग) और सीस (सीसा) इन 6 धातुओं के अतिरिक्त कृष्ण लौह (तीक्ष्ण लोह) और लोहमल (किट्ट) का उल्लेख है। इनमें से सुवर्ण, रजत, ताम्र, सीस, जपु और लोह तो तत्व धातुएँ है पर रीति (पीतल) मिश्र धातु है। लोहमल लोहे का आक्साइड है।

खनिज द्रव्यों का एक स्थल पर सूची में उल्लेख न होना इस बात का प्रभाव है कि सुश्रुत के समय में इनका प्रयोग अधिक प्रचलित नहीं था। यवक्षार, लवण (पंच लवण) मनः शिला, कासीस, हरताल और सुराष्ट्रजा (फिटकरी) का एक स्थल पर साथ–साथ उल्लेख है। एक स्थल पर कासीस द्वय अर्थात् पीले और हरे कासीस का उल्लेख है। हरा कासीस शुद्ध है और हवा में रखा–रखा ही यह पीला पड़ जाता है। इसी स्थल पर तुत्थक (मयूर तुत्थ या नीला थोथा) का नाम भी आता है। ऊषक क्षार–मृत्तिका है और सैन्धव से अभिप्राय सेंधा नमक से है।

विष परीक्षण

सुश्रुत के कल्प स्थान के प्रथम अध्याय श्अन्नपानरक्षाकल्प्य का उल्लेख है। राजा को विष मुक्त मुख्यता अन्न और दान (भोजन और पेय) द्वारा दिया जा सकता है, पर विष देने के और भी मार्ग है। जैसे दन्त काष्ठ या दातुन, अभ्यंग (शरीर पर तेल आदि का मर्दन), अवलेखन (कंघी आदि) उत्सादन (उबटन), कषाय (स्नान का गल), परिषेक (हिड़का जल), माला, वस्त्र, शय्या, कवच, आमरण (गहना) पादुका (जूता या खडाऊँ), पादपीठ, (हाथी–घोड़े के पीठ पर बैठने का होदा या जीन) विषैली नस्य (नाक द्वारा सूंघने के इत्र आदि), धूम, अंजन आदि।

अग्नि परीक्षण – विषैले अन्न से अग्नि में चट–चट की आवाज बहुत होता है। आग की ज्वाला का रंग मोर की गर्दन के समान हो जाता है। इसका तेज दुरूसह होता है। ज्वाला फटी–फटी दीखती है, धूम तीक्ष्ण होता है और आग जल्दी बुझ जाती है।

द्रव्यपरीक्षण – दूध, मद्य, पानी आदि तरल द्रवों में विष के कारण नाना प्रकार की रेखाएँ आती है और बुलबुले उठते हैं। इनमें प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता और अगर दिखाई देता है तो वह यमल अर्थात् जुड़वाँ, छेदवाला पतला (तनु) और विकृत होता है। सुश्रुत ने इस अध्याय में विष से प्रकट होने व अनेक लक्षणों का उल्लेख किया है, और उनके निराकरण के योग भी दिए हैं। ये विष स्थावर और जंगम दोनों प्रकार के हैं। स्थावर विष मूल, पत्र, फल पुष्प, त्वक् (छाल), दूध सार, निर्यास (गोंद) धातु और कन्द इस प्रकार दस भेद बताए गए है। धातु विष के भष्म और हरि ताल की गिनती है। कुल स्थावर 55 गिनाए गए हैं। जंगम विष अनेक विषैले पशुओं के निम्न सोलह स्थान में से कहीं से भी प्राप्त हो सकता है–दृष्टि निरूश्रस दंष्टा (दांत), नख, मूत्र, पुरीष (विष्ठा), शुक्र, लाला (लार) अर्न्तव, मुख–संदर्श (डंक), विशार्धित (गुदा से किया हुआ कुत्सित शब्द), तुण्ड, अस्थि, पित्त शूक और शक। अन्य प्रकार के विष जैसे सर्प, कुत्ता, बिल्ली, कीट, जल में रहने वाले एवं अन्य प्रकार के जानवरों में बताए गए हैं। इन सब विषों से होने वाले रोगों के लक्षण और उनके उपचार सुश्रुत के कल्पस्थान के अध्यायों में विस्तार से दिए है।

पारा और गंधक – जिस प्रकार चरक संहिता में केवल दो–तीन स्थानों पर पारे और गंधक का उल्लेख किया गया है उसी प्रकार सुश्रुत में भी। मुख पर लगाए जाने वाले अभ्यंग के योग में हेमांगत्वक वट का पाण्डुपत्र, कालयक, पद्मक, पदमकेश्वर लाल और श्वेत चन्दन आदि के साथ पारद का भी नाम दिया गया है। एक स्थान पर तार (चाँदी) सुवर्ण, सारिवा (ससुरेन्द्र गोप) और कुरुविन्द के साथ सुतार शब्द टीकाकारों भी आया है। (बाणों पर लेप करने के लिए)। सुतार का अर्थ टीकाकारों द्वारा बताया जाता है।

सुश्रुत का शल्य क्षेत्र में योगदान

सुश्रुत की विशेषता शल्य कर्म में है। सुश्रुत संहिता में कहा है कि जब शिष्य सर्वशास्त्रों में पारंगत हो जाए, तो उसे स्नेह कर्म और छेद कर्म का उपदेश देना चाहिए। इन दोनों कर्म (स्नेह एवं छेद) को सिखाने के लिए प्रयोगात्मक रूप से छेद कर्म के लिए पुष्प फल, एवरुक (कुम्हड़ा, लौकी, तरबूज, पेठा, फूट, ककड़ी), मृत पशु, घुन खाई लकड़ी या बांस की नाल, आदि पर सिखाने की बात की है। अन्य प्रयोगों के द्वारा शल्य कर्म में निपुणता हासिल करने की बात स्पष्ट की गई है। सिर भेदन में कोई भी व्यक्ति बहुत पारंगत नहीं हो सकता, क्योंकि ये शिरा और धमनियां मछली के समान चलायमान रहती हैं। अतः इन्हें यत्न से (सावधानी से) वेधना चाहिए।

सुश्रुत के प्रयोग में लाए गए कर्मों में यथा (छेद, मेद्य, लेख्या, एष्य आहार्य, विस्राव्य, सीव्य) सिलाई करना बन्धन (बांधना), कर्ण सन्धिबन्ध (मृदु चर्म या मांसपेशियों पर या उत्पल नाल पर सिखाना चाहिए), अग्नि क्षार कर्म मृदु मॉस खण्ड पर सिखाने की बात की है एवं नेत्र प्राणिधान उदकपूर्ण घट के पार्श्व के मुँह में या अलाबू के मुख में कराके सिखाने का उल्लेख किया है।

सुश्रुत द्वारा उल्लिखित उपकरण

प्लास्टिक सर्जरी

प्लास्टिक सर्जरी के क्षेत्र में सुश्रुत का योगदान विशिष्ट रूप से माना जाता है। संवेदनशील खाल के पल्लों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाना पूर्णतः भारतीय पद्धति है। सुश्रुत ने ही पहली बार कटे हुए गाल को गरदन या पास की जगह से खाल उपाटकर (निकालकर) ठीक करने की संभावना को प्रस्तुत किया।

मोतियाबिंद को दबाने की कला का आविष्कार करने की श्रेय भी सुश्रुत को दिया जाता है। इसका ज्ञान प्राचीन ग्रीस और मिश्र के शल्य चिकित्सकों को न था। अंग काट दिए जाते थे, पेट का ऑपरेशन होता था, टूटी और उतरी हड्डियों बैठाई जाती थी। सुश्रुत संहिता में बनाए गए तरीके कभी–कभी आज के सरजनों द्वारा अपनाए गए तरीकों से ज्यादा कारगर सिद्ध होते थे। शल्य का विस्तृत ब्योरा सुश्रुत संहिता के चिकित्सा स्थान–दो में दिया हुआ है। आंतों के चोटिल हो जाने पर सुश्रुत ने निदान की सलाह में बताया है कि निकले हुए भाग की अंगुली को धीरे–धीरे चलाते हुए व्यवस्थित कर देना चाहिए। जरूरी हो तो शल्यवैद्य इस घाव को चाकू से बढ़ा दे। आंत टूट गई हो तो टूटे हुए टुकड़ों के छोरों पर जिंदा चींटे लगाकर जोडने चाहिए। फिर उसकी देह काट देनी चाहिए। सुश्रुत का चिकित्सा स्थान दो की तुलना प्राचीन यूरोपीय शल्यशास्त्र के किसी ग्रन्थ के इसी विषय के अध्याय से कर के देख लें।

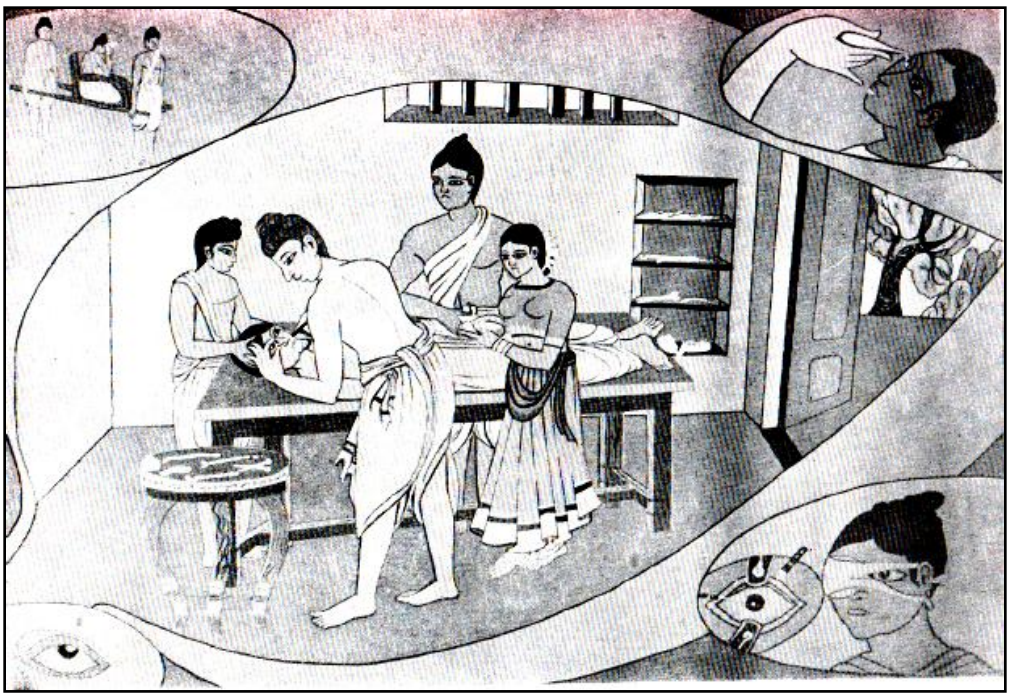

मोतियाबिन्द ऑपरेशन शल्य क्रिया

नाक की प्लास्टिक सर्जरी

सुश्रुत ने कृत्रिम नाक लगाने की प्रक्रिया को बताते हुए कहा है श्नासिका कट जानेपर पहले किसी लता का काटे हुए या अलग हुए पूरे हिस्से को अच्छी तरह टांक सकने योग्य मांस का टुकड़ा जाल में से (नीचे से ऊपर की ओर करके) काटना चाहिए और इसे जल्दी कटी हुई नाक की जगह को छीलकर उसके ऊपर चिपका देना चाहिए। फिर वैद्य को ठंडे दिमाग से तेजी के साथ एक ऐसी पट्टी इसके ऊपर बांधना चाहिए जो इष्ट कार्य की साधिका हो और सुन्दर लगे (साधु बन्ध) वैद्य को निश्चय कर लेना चाहिए कि कटे हुए हिस्से को ठीक से चिपका दिया गया है फिर दो छोटी नलियां नथुनों में डाल देनी चाहिए जिनसे सांस ली जा सके और जिससे चिपकाया गया मांस नीचे न आ सके। इसके बाद चिपकाए गए भाग पर पतंग, यार्ष्ट मधूक और रसांजन को साथ–साथ पीसकर उसका चूर्ण बुरकना चाहिए, नाक के ऊपर पूरी तरह सूती कपड़ा लपेट देना चाहिए और उसके ऊपर कई बार शुद्ध किया गया तिल का तेल छिड़कना चाहिए। पीने के लिए रोगी को घी देना चाहिए और उसकी तेल से मालिश करनी चाहिए और उसके द्वारा खाए गए भोजन के पूरी तरह पच जाने के बाद उसको विरेचन (दस्त) कराने चाहिए। इस घाव के पूरी तरह ठीक हो जाने पर समझना चाहिए कि मांस ठीक से चिपक गया है। पर आंशिक लाभ में नाक को फिर छीलकर और मांस चिपकाना चाहिए। चिपकाई गई नाक उसकी स्वाभाविक और पहली की लम्बाई न आने पर लम्बा करना चाहिए या उसको शल्य क्रिया द्वारा नए बने मांस के अनुसार फिर से बनाना चाहिए।

शल्यगार

जिस व्यक्ति को घाव लगा हो, उसे पहले शल्यागार में ले लाया जाना चाहिए। वह आगार वास्तुकला के आदर्श नियमों के अनुरूप बना होना चाहिए। इसे प्रशस्त (बड़ा) स्वच्छ और धूप एवं हवा से सुरक्षित होना चाहिए। ऐसे स्थान पर रोगी मानसिक, आगन्तुक और शारीरिक रोगों से मुक्त रह सकेगा। इस शल्यागार में शल्य कर्म के समय क्या सामग्री रहनी चाहिए, इसकी चर्चा भी सुश्रुत इस प्रकार की है– शल्य कर्म को करने वाले वैद्य को पहले से ही इतनी चीजों की व्यवस्था कर लेनी चाहिए – यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, शलाका, शृंग, जलौका (जौंक), अलाजू, जाम्बूवौष्ठ, पिचु (रुई का पोया, प्रोत, सूत्र (सीने का धागा), पत्र, पट्ट, मधु, धृत, वसा, दूध, तैल, दर्पण, कषाय, आलेपन, कल्क, व्यजन (पंखे) गरम और ठंडा पानी, कटाह आदि और ऐसे परिचारक जो मृदुभाषी, स्थिर और हट्टे–कट्टे हों।

आलेप या आलेपन

आलेपन हमारे देश की बड़ी पुरानी परम्परागत प्रथा है। चरक ने कुष्ठ रोग के निवारण के लिए जहाँ सॉप प्रयोग (घी देना) वमन कराना, विरेचन, रक्तगोक्ष प्रच्छन, सिरात्यधन, आस्थापन बस्ति, अनुवासन, नस्य वैरेचनिक, ध्रम प्रयोग, प्रस्तरस्वेद, नाडीस्वेड, कूर्चयन्त्र से घर्षण करके रक्त के उत्क्लेश का निवारण अथवा तीक्ष्ण शस्त्र से उभरे हुए कुष्ठ का विलेखन रक्त स्राव के लिए शृंग या अलाबू का प्रयोग या जौंको का प्रयोग और क्षार का प्रयोग और इसी प्रकार अन्य प्रयोग बताए है, वहीं इसकी चिकित्सा के लिए अनेक प्रकार के लेपों का भी निर्देश किया है। सुश्रुत ने चरक की परम्परा में व्रणलेपन का अच्छा वर्णन किया है। इसे सब उपायों में शीघ्र पीड़ा को दूर करना माना है। शुष्क आलेप पीड़ा देते हैं, अतः उनको सुश्रुत ने अच्छा नहीं समझा। सुश्रुत ने आलेप तीन प्रकार के माने है–प्रलेप, प्रदेह और आलेप।

धात्री विद्या

व्यावहारिक धात्री विद्या के क्षेत्र में पाठक पर सुश्रुत की महानता का बड़ा ही असर पड़ता है। विभिन्न उलटफेर, आकुंचन, सरकने की गतियां, कठिन प्रसूति मामलों में चिमटियों का प्रयोग और दूसरे प्रसूति ऑपरेशन जिनमें कपाल छेदन आदि द्वारा बच्चे को नष्ट करना या अंग–भंग शामिल थे, सुश्रुत संहिता में पहली बार क्रमबद्ध रूप में वर्णित किए गए और यह भी तब जब दूसरे देश चिमटियों को स्वप्न में भी नहीं देख पाए थे। सुश्रुत वाधा रहित मामलों में औजारों से ऑपरेशन करने की बात करते हैं और स्पष्ट कर देते हैं कि औजार का प्रयोग उन्हीं मामलों में करना चाहिए, जिनमें बच्चे और पातमार्ग का अनुपात इतना त्रुटि पूर्ण हो कि औषधों के प्रलेप और धुंआ देने आदि से स्वाभाविक प्रसव नहीं कराया जा सकता। प्रसूति की अवस्था और चुनाव आदि के बारे में उन्होंने जो हिदायते दी है, वे वही हैं जो आज के लेखकों के आधुनिक वैज्ञानिक ग्रन्थों के देखने से मिलती है।

शरीरवाद

मानव के शरीर में हड्डियों की संख्या के बारे में अथर्ववेद के पाष्णि सूत्र में प्रारम्भिक उदाहरण है, जिसके श्लोकों से ज्ञात होता है कि वहाँ अनेक हड्डियों का जिक्र है, जो चरक और सुश्रुत संहिताओं में थोड़े से बदले हुए नामों के साथ आती हैं। चरक संहिता में भी हड्डियों की संख्या 360 तक गिनाई गई है जिसमें दांत, नाखून आदि शामिल है।

वैदिक परम्परा में मानी गई 360 हड्डियों के स्थान पर सुश्रुत166 केवल 300 हड्डियों को मानते हैं। शल्य तंत्र में 300 हड्डियों के वर्गीकरण में 120 शाखाओं में 117 श्रोणि, पार्श्व, पृष्ठ और तुरस और उदर क्षेम में और 63 ग्रीवा और ऊपर के अंगों में। इस तरह कुल 300 हड्डियों होती है।

सुश्रुत के बाद, बुद्ध के समसामयिक (ई.पू. 566–486) मगधाधिपति बिम्बसार के राजवैद्य जीवक कोमाभच्च का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जीवक का जन्म राजगृह में हुआ। चिकित्सा–शास्त्र में पारदर्शिता प्राप्त करने के लिए उन्होंने आयुर्वेद–शिक्षा के पीठास्थान तक्षशिला में 7 वर्ष बिताए। वे आत्रेय के शिष्य थे। पुनर्वसु आत्रेय को छोड़कर, भिक्षु आत्रेय और कृष्णात्रेय, इन दोनों आत्रेयों के होने का भी पता चलता है। जीवक किस आत्रेय के शिष्य थे, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है।

आत्रेय द्वारा प्रवर्तित चिकित्सा पद्धति में काय–चिकित्सा को ही मुख्य स्थान मिला है। परंतु जीवक शल्य चिकित्सा में भी असाधारण रूप से कुशल थे। उनके संबंध में प्रचलित कहानियों से पता चलता है कि उन्होंने कई क्षेत्रों में करोटि काटकर जख्मी स्थान से कृमि निकाले और इस प्रकार रोगियों के सिरदर्द के उपचार किए। राजगृह में एक धनी व्यक्ति की पत्नी का पेट चीरकर अंतडियाँ बाहर निकाल लीं और उनमें से जो उलझ गई थीं, उन्हें सुलझाकर फिर यथास्थान रख दिया। जीवक की इस प्रकार की आश्चर्यजनक शल्य–चिकित्सा संबंधी अनेक कहानियाँ हैं। बुद्ध को उन्होंने कई बार दुरारोग्य व्याधि से मुक्त किया। कठिन व्याधि से पीड़ित होने पर राजा बिंबिसार भी उनकी चिकित्सा से अच्छे हो गए।

निष्कर्षत

स्पष्ट है कि सुश्रुत संहिता में निरूपित शल्य के व्यापक क्षेत्र का उल्लेख किया है, वह वास्तव में अद्भुत और आधुनिक युग में सर्जरी के चिकित्सा वर्ग के लिए अति महत्वपूर्ण है। सुश्रुत ने उस युग में प्लास्टिक सर्जरी का आविष्कार कर चिकित्सा विज्ञान में क्रान्तिकारी योगदान दिया है। कान, नाक की प्लास्टिक सर्जरी का एक सुखद प्रयास, मानव कल्याण के लिए अति महत्व का बन जाता है। शल्य यन्त्रों का शल्य से पूर्ण व शल्य–प्रक्रिया के पश्चात क्या प्रयोग, उपयोग था, स्पष्ट बताने का प्रयास किया है। शल्य वैद्य की जिम्मेदारी के लिए उन्होंने आवश्यक हिदायतें जो दी है वह सराहनीय है। उनका शल्य चिकित्सा में योगदान भारत के लिए ही उल्लिखित नहीं, वरन् सम्पूर्ण विश्व के लिए पथ प्रदर्शक रहा है। औषधि रसायन के क्षेत्र में भी उन्होंने उपयोगी विशद् वर्णन दीर्घायु, स्वस्थ रहने की अनवरत आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त पर अमल किया है।

संदर्भ

[1]. मुखोपाध्याय, गिरीन्द्रनाथ, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडीसन, भाग–1, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, पृ. 168
[2]. हारीत संहिता, 3/56
[3]. चरक संहिता, 6/13
[4]. भाव प्रकाश, 1/2
[5]. चरक संहिता, 4/8
[6]. चरक संहिता, 1/15
[7]. महाभारत, 13,4.551
[8]. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, 2006, पृ. 22
[9]. सुश्रुत संहिता, 38/37
[10]. सुश्रुत संहिता, कल्पस्थान, 1/28
[11]. सुश्रुत संहिता, 1/29–30
[12]. सुश्रुत संहिता, चि.अ., 25/39
[13]. वही, शा.अ., 8/20
[14]. सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय, 16
[15]. एफ.सी.टिटजेल का लेख, हियरेडिटी एंड सम ऑफ इट्स सर्जिकल एसपेक्सट्स मेडीकल एडवान्स,
[16]. जिल्द, 64, जून 1906, पृ. 357 ओ.जी.जग्गी, इंडियन सिस्टम ऑफ मेडीसिन, भाग–4, पृ. 175
[17]. सुश्रुत संहिता, 19/5–6
[18]. सुश्रुत संहिता, 18/3–12
[19]. चरक संहिता, शा.अ., 7/6
[20]. आचार्य बलदेव उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 17–22